International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 25-05-2022, Accepted: 10-06-2022, Published: 27-06-2022
Volume 8, Issue 3, 2022, Page No. 59-62

जनधर्मी काव्य के प्रणेता एवं राजनीतिक विद्रोह के प्रचारक ''नागार्जुन''

संतोष साहू[1], वंदना त्रिपाठी[2]
[1] वधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत
[2] प्राध्यापक हिन्दी शा. कन्या. स्नात. महाविद्यालय, जिला रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश

नागार्जुन के काव्य में प्रतिरोध का स्वर सबसे असरदार उनके व्यंग्य में है। भारत की गरीबी के जिम्मेदार ब्रिटेन को माने और जब ब्रिटेन के साथ भारत के नेताओं का मैत्री और सम्मान का भाव नागार्जुन देखते हैं तो उनके मन में आक्रोश स्वाभाविक है। एक बार विजय बहादुर सिंह ने उनसे पूछा कि बाबा आप कविता कब लिखते है? बाबा ने कहा ''कविताएँ, जब गुस्सा आता है तब लिखता हूँ और तब बहुत मूड में होता हूँ, फिर पूछा–गुस्सा किस पर ? बाबा बोले–समाज या व्यवस्था पर। वे सामंतवादी व्यवस्था के मार्ग में अवरोध डालते हैं। उसके विरुद्ध आम जन को जागरुक करते हैं।

मूल शब्द: यथार्थ, जनधर्मी, सामंतवादी, साधारणीकरण, नागार्जुन, काव्य

प्रस्तावना

व्याख्या– हम कह सकते हैं कि जीवन के अभाव और संघर्ष का साधारणीकरण हुआ नागार्जुन के काव्य में उनका संघर्ष समष्टिवादी है। उनके काव्य में प्रतिरोध का स्वर बिल्कुल साफ है उसमें कहीं संशय की स्थिति नहीं है। मैनेजर पाण्डेय कहते हैं– ''नागार्जुन की काव्य दृष्टि में कोई दुविधा नहीं है। इसीलिए उनकी कविता की संवाद धर्मिता में न हकलाहट है, न शब्दों का दोमुंहापन ।''

वे लोक जीवन के यथार्थ से खुद को जोड़ते हैं। नागार्जुन स्वयं को और अपनी कविता को बार–बार कबीर से जोड़ते हैं। वे कहते हैं –

'पैदा हुआ था मैं
दीन–हीन अपठित किसी कृषक कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि! मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
हरा हुआ कि नहीं चरने को दौड़ते !!
जीवन गुजरता प्रति पल संघर्ष में !!''

वे ब्रिटिश मल्लिका और उनके भारतीय भक्तों पर खुलकर हँसते हैं और मर्मान्तक व्यंग्य करते हैं, जनधर्मी होने का गौरव उनको इस कारण भी मिला है, क्योंकि वह सत्य की खोज करते हुए मानव को एक चेतना से भरा संसार दिखाया है–

''आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहर लाल की
रफू करेंगे फटे पुराने जाल की
यही हुई है राय जवाहर लाल की!''

पूरी कविता लोक गीत शैली में लिखी है। रानी एलिजाबेथ के स्वागत का प्रसंग प्रतीकात्मक हैं बाबा इस बहाने सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों पर व्यंग्य करते हैं। बाबा की कविता है शासन की बंदूक देखें –

''खड़ी हो गई चाँप कर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट सी शासन की बंदूक
सत्य स्वयं घायल हुआ गई अहिंसा चूक
जहाँ तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक।''

शासन की बंदूक जनता की आवाज को उसके प्रतिरोध को कुचल कर रख देती है पर बाबा चुप रहने वाले नहीं उनकी सर्जना में दम है। बन्दूकों का सामना करने की शक्ति है इसीलिए इस कविता के आखिरी दोहों में दमन की निरर्थकता और जनता की विजय विश्वास झलकता है।

''जली ठूंठ पर बैठकर कई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।''

बाल न बाँका कर सके' मुहावरे का सटीक प्रयोग बाबा करते हैं। उनके भीतर का यही विश्वास उनके प्रतिरोध चेतना को बल देता रहता है। उनकी 'इन्दु जी क्या हुआ आपके' कविता देखिए। बिना किसी लाग लपेट के इन्दु जी से पूछते हैं। पूछते हैं कि कहाँ भटक गई? बापू और गुरुदेव की संगत के गुण कहाँ विलीन हो गए।क्या जवाहर लाल के यही आदर्श थे?

''इन्दु जी, इन्दु जी,
क्या हुआ आपको?
सत्ता की मस्ती में भूल गयीं बाप को!
क्या हुआ आपको?
आप की चाल–ढाल देख–देख लोग हैं दंग
हकूमती नशे का कैसा चढ़ा रंग
छात्रों के खून का चस्का लगा आपको
काले चिकने माल का चस्का लगा आपको
किसी ने टोका तो ठस्का लगा आपको।''

रबर विहीन ठूँठ पैडल, फटे बिवाई तक बाबा गरीबों को देखते हैं, बिल्कुल सूक्ष्म तर दृष्टि से। उसे गहरे तक महसूस करते हैं, संवेदना जगती है और फिर व्यवस्था के विरुद्ध उनका अंतः उबलने लगता है, आक्रोश उनकी कविताओं में बेवाकी से प्रकट होता है, प्रतिहिंसा का भाव जगता हैं शासन को खरा–खोटा सुनाते हैं खीझते हैं। इंदिरा जी शासन में थीं।

क्या–क्या नहीं कहा बाबा ने इंदिरा को? इंदिरा को या व्यवस्था को कैसी–कैसी घिनौनी उपमा देते हैं–डायन के गुर सीख गयी हो, तुम तो मादा अजगर निकलीं, संविधान का कवच पहनकर देखो कैसे तुमक रही हैं, देशी तानाशाही का पुर्णावतार, कुबेरों की मनचाही करने वाली संवैधानिक तानाशाह, नफाखोर सेठों की माई, काले बाजार की कीचड़–काई, शिशुमुंड चबाने वाली बाघिन आदि–आदि।

नागार्जुन परिस्थितियों से समझौता नहीं करते। वे उसका प्रतिकार करते हैं। वे परिस्थितियों को चुनौती देते हैं। वे आगामी पीढ़ी को अपने अनुभव के आधार पर सचेत भी करते हैं। सचेत तो हम उसी को करते हैं जिसे प्रेम करते हैं। आगामी पीढ़ी के प्रति वे आशावान दिखते हैं और संदेश देते है –

''तुम किशोर – तुम तरुण
तुम्हारी राह रोक कर
अनजाने यदि खड़े हुए हम
कितना हो गुस्सा आए, पर, मत होना नाराज
वयः संधि के कितने ही क्षण हमने भी तो
इसी तरह फेनिल क्षोभों के बीच गुजारे
कान लगाकर सुनो कहीं से आती है आवाज
भले ही विद्रोही हो,''

जब वो देखते हैं कि भारतीय जनतंत्र पूँजीवादी है, बस साम्राज्यवाद और सामंतवाद के विरुद्ध लड़ने में असमर्थ है बल्कि उससे समझौता कर बैठी है उल्टे जनता का दमन करती है तो नागार्जुन की प्रतिरोध चेतना मूक नहीं रह सकती। वह सौ–सौ फन काढ़ कर संघर्ष के लिए तैयार हो जाती है उनका प्रतिहिंसा भाव सजग हो उठता है। दिनकर की एक पंक्ति याद आती है –

''हिलो डुलो मत
मुझको अपना रक्त पीने दो
अचल रहे साम्राज्य शांति की
जीओ और जीने दो।''

1976 में बाबा ने शासन के लिए कहा – बंदूकें ही हुईं आज माध्यम शासन का / गोली ही पर्याय बन गयी राशन का नागार्जुन एक ओर सत्ता से सटे सामंतों को देखते हैं तो दूसरी ओर अर्धनग्न गरीबों को। समाज व्यवस्था का यह कंट्रास्ट उन्हें सदैव चिंतित करता है। कवि पूछता है अपनी कविता 'घिन तो नहीं आती है'

नागार्जुन ऐसी ही शान्ति के साम्राज्य और व्यवस्था में खलल डालते हैं उसमें अवरोध उत्पन्न कर देते हैं ताकि एक नयी धारा बने। वे सरिता में गतिशीलता लाते हैं ताकि स्थिर जल की काई फटे। वे धुंध को मिटाना चाहते हैं। बाबा साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, दमन के विरुद्ध संघर्ष में अपना खून सुखा लेंगे, स्वयं को गला लेंगे किन्तु अपना रक्त नहीं पीने देंगे। वे आम जनता को जगाएँगे, देखो ये साम्राज्यवादी शक्ति तुम्हारी खून चूस रही है। उठी और प्रतिरोध करो। संघर्ष करो। बाबा अन्याय का पोल खोलते है –

''मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवालेगा घर वालों से वह तो था बीमार
अगर भूख की बातों से तुम कर न सके इनकार
फिर तो खाएँगे घर वाले हाकिम की फटकार
ले भागेगी जीप लाश को सात समुन्दर पार।''

नागार्जुन जनता पर होने वाले किसी भी अन्याय, अत्याचार अथवा आक्रमण को अपने ऊपर होने वाले आक्रमण के रूप में देखते हैं और उसका प्रतिकार करने के लिए उतावले हो उठते हैं और अत्याचार का समुचित प्रतिरोध न होते देख क्षोभ, क्रोध से भर उठते हैं–(नागार्जुन की कविता, पू–158) वे कहते हैं–शासन के कुछ और सत्य है जनता के कुछ और (हजार–हजार वाहों वाली से)
उन्हें तो कभी–कभी धनी ओर निर्धन के बीच की खाई बर्दाश्त से बाहर हो जाती है और वे उनके मन में धनिकों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। बाबा खीझते हैं, चिढ़ते हैं, चिल्लाते–चिल्लाते खीझते हैं –

''क्या–क्या सुनू, क्या–क्या न सुनूँ ?
कदम–कदम पर खीझ उठती है दिल के अन्दर
कितना चीखूँ, कितना चिल्लाऊँ?
किस–किस को फटकाऊँ ?
किसे–किसे डॉट पिलाऊँ ?
क्या–क्या बकू, क्या–क्या न बकू
अच्छा हो अब मैं भी
बन्दरों की उस त्रिमूर्ति को अपना शिक्षक मान लूँ। (अच्छा हो से)'';

किन्तु जनता जब रोजी–रोटी की माँग करती है और उनपर अस्त्र–शस्त्र से प्रहार होता है तो नागार्जुन फिर शब्दों की लाठी थामते हैं। बाबा का विरोध व्यक्ति से नहीं, सामन्तवादी मानसिकता से है। वे उस मानसिकता पर प्रहार करना चाहते हैं।
निर्धन देश के लाखों अभाव ग्रस्त के प्रति इससे बड़ी बौद्धिक सहानुभूति शायद ही कोई कवि व्यक्त कर सके। नागार्जुन की कविता में प्रतिरोध कई स्तरों पर आया है। कई–कई रूपों में वंचितों के प्रति संवेदना, अभाव और दैन्य, दारिद्रय का कई रूपों में चित्रण, खीझ की अभिव्यक्ति, आक्रोश का अभिव्यक्ति, व्यंग्य प्रहार, क्षोभ व्यक्त, व्याकुलता न्याय का गुहार, अन्याय और शोषण का पोलखोल, चुनौती, प्रतिशोध प्रतिहिंसा आदि।
नागार्जुन चुप बैठने वालों में नहीं थे। वे चुप बैठ ही नहीं सकते थे। उनके भीतर की संवेदना उर्जा उन्हें मुँहतोड़ जवाब देने को सदैव उकसाता रहता था। वे व्यवस्था के ढोंग की पोल खोले बिना रह नहीं सकते थे। वे व्याकुल हो उठते थे, तिलमिला उठते थे 'प्रतिहिंसा का महारुद्र' में वे जवाब देते हैं देखें–

''फिलहाल तुम्हारा यह मारक खेल
अभी कुछ समय और चलेगा
लेकिन याद रखो–
हम तुम्हारी बिरादरी के
एक–एक सदस्य का वध करेंगे!
तुम मुनाफा लोभी
तुम स्वार्थ के नारकीय कीड़े
इस जंगल का एक–एक बिरवा
तुम्हारे समूचे वर्ग के लिए
प्रतिहिंसा का महारुद्र प्रमाणित होगा।''

वे चेतना को महत्व देते थे। बाबा को एक बार विजय बहादुर जी ने पूछा बाबा ये 'बुद्धिजीवी' शब्द तो बहुत गलत अर्थ में इस्तेमाल होने लगा है अब बाबा बोले–हाँ! अब हम लोगों को इसकी जगह अपने अर्थ के लिए 'चेतनजीवी' शब्द का व्यवहार करना चाहिए। नागार्जुन को अपने पर अटूट विश्वास था। हो भी क्यों न जो भीतर से ईमानदार होते हैं उन्हें किसी की परवाह नहीं होती।

निष्कर्ष

सच बाबा आज सदेह हमारे बीच नहीं हैं पर उनकी आभा सदैव हमें अन्याय के प्रतिकार की शक्ति प्रदान करती रहती है। उपेक्षितों के संघर्षों में उनके शोनित की बूँदें मुस्काती हैं। बाबा के चिर संघर्ष ने उन्हें साहित्य का राजा बना दिया। उन्हें यदि ठीक से समझना हो तो कबीर को समझना होगा। डा. नामवर सिंह ने ठीक ही नागार्जुन को आज का कबीर कहकर सम्बोधित किया है। निर्भीक, अक्खड़, खुली चुनौती देने वाला नागार्जुन उनकी कविता में आदि से अंत तक प्रतिरोध चेतना विभिन्न स्तरों पर दिखता है यही उनकी कविता की शक्ति है। हजार–हजार बाँहों वाली में अपने इस गर्वोक्ति से वे स्पष्ट संदेश देते हैं, चुनौती देते हैं।

जिसने भी बाबा का स्पर्श महसूस किया है वे जानते थे कि कितनी आत्मीयता, कितना विश्वास, कितनी संवेदना का अहसास, कितनी शक्ति मिलती थी उन्हें उस फक्कड़ औघड़ फकीरी साहित्यकार के व्यक्तित्व में। ऐसे कवि के प्रति ह्रदय में अनेकों ही संवेदना से भरी मनोभावनाओं का जन्म हो जाता है।

संदर्भ

1. नागार्जुनः व्यक्तित्व एवं कृतित्व–पृ0 23, डॉ0 अजिनाथ नागरगोजे, जगत भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2012
2. पहल त्रैमासिक –पत्रिका, पृ0 35, संपादक ज्ञानरंजन, अप्रैल–जून, जबलपुर 1996
3. नागार्जुन रचनावली के संदर्भ में एक बातचीत के दौरान–विजय बहादुर सिंह से, आलोचना –पत्रिका, संपादक मधुरेश, जुलाई–सिंतम्बर, 1985
4. नागार्जुनः कवि और कथाकार –पृ0 69, सत्यनारायण रचना प्रकाशन जयपुर, संस्करण 1971
5. नागार्जुन एक अध्ययन–पृ0 49, डॉ0 ललिता अरोड़ा, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, प्रकाशन, संस्करण 1982
6. मातृभुमि दैनिक–पृ0 37, अगस्त अंक 7, 2004
7. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव और विकास–पृ0 124, डॉ0 इन्दिरा जोशी, देवनागर प्रकाशन, संस्करण 1985